18 स्कूलों में खेल : प्रावधान और चलन

रेखा बड़सिवाल

शिक्षा पर तमाम नीति दस्तावेज लगभग हमेशा ही स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा की अपरिहार्य भूमिका का हवाला देते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 पैरवी करती है कि ''स्वास्थ्य सम्बन्धी सरोकारों की बुनियादी समझ जरूरी है, लेकिन और भी अधिक महत्वपूर्ण है स्वास्थ्य, कौशल और शारीरिक तन्दुरुस्ती का अनुभव और विकास, जिस तक खेलकूद, व्यायाम और व्यक्तिगत तथा सामुदायिक स्वास्थ्य सम्बन्धी आचरण के साथ व्यावहारिक सम्बन्ध के माध्यम से पहुँचा जा सकता है।''खेलों को लेकर हमारा दृष्टिकोण विकसित हुआ है। अब हम इनमें अन्य विषयवस्तु को भी शामिल करते हैं और इन दोनों को एकीकृत करने पर बल भी देते हैं ताकि स्वास्थ्य, स्वच्छता और शारीरिक शिक्षा की हमारी समझ बढ़ सके।[1]

लेकिन इस महत्वाकांक्षा को हासिल करने के लिए शिक्षानीति के समन्वित प्रयासों, अध्यापकों और प्रशासकों द्वारा मुहैया करवाए गए पर्याप्त बुनियादी ढाँचों, अच्छी सुविधाओं और उचित अवसरों का होना आवश्यक होगा। पोजिशन पेपर भी इस बात की ओर ध्यान दिलाता है कि स्कूलों में स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, महज 'गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड' तक सीमित होकर रह गई है। इस निबन्ध में, स्कूलों में लगने वाले 'गेम्स और स्पोर्टस्' पीरियड के उद्देश्य, व्यवस्था और चलन के बारे में चर्चा का प्रयत्न किया गया है। इसके लिए यह बच्चों, अभिभावकों, अध्यापकों, शारीरिक–शिक्षा शिक्षकों और प्राचार्यों से हुई अनौपचारिक बातचीत से मिली जानकारी का उपयोग करता है।

उद्देश्य

सभी स्कूलों में उनकी पाठ्यचर्या के एक हिस्से के तौर पर गेम्स और स्पोर्टस् को रखा जाता है। स्कूल की समय–सारिणी में उनका प्रावधान किया गया दिखाई देता है। सभी हितधारक इस बात पर सहमत थे कि स्कूलों में गेम्स और स्पोर्ट्स को समय देना जरूरी है ताकि बच्चों में शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा मिले। प्रशासकों का कहना था कि बच्चों के समग्र विकास के लिए यह बेहद जरूरी है क्योंकि यह उनकी हिचकिचाहट, डर और तनाव को कम करता है, और उन्हें पराए लोगों से मिलने–जुलने के अवसर देता है जिससे उनकी सामाजिकता का विस्तार होता है। दो स्कूली प्राचार्यों ने यह भी जोड़ा कि आदर्श रूप से तो ''खेलों को अन्य विषयों के बराबर समय दिया जाना चाहिए, बल्कि उनसे भी थोड़ा अधिक ही'', क्योंकि बच्चे के व्यक्तित्व–विकास की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है और इसके चलते बाकी सब विषयों में भी उसकी पढ़ाई पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उनका कहना था कि खेल के माध्यम से बच्चे अनुशासन, नियम, नियन्त्रण और वक्त की पाबन्दी सीखते हैं।

एक और प्रमुख कारण सबकी सूची में सबसे ऊपर रहा। वह यह कि खेलकूद बच्चे के लिए ताजगी का साधन बनते हैं, विशेष तौर से इसलिए कि उनका मन–मस्तिष्क स्कूल में लगातार पढ़ते रहने से ऊब और थकावट का शिकार होता है। बच्चों ने जोर देकर कहा कि स्पोर्टस् पीरियड के बिना तो स्कूल बड़े नीरस और उबाऊ हो जाएँगे। सभी माँ–बाप का कहना था कि खेलना बच्चों के लिए मनोरंजन का काम है और स्कूलों में गेम्स और स्पोर्ट्स का कालखण्ड, विषय–कालखण्डों के बीच में रखा जाना चाहिए ताकि बच्चे तरोताजा, सक्रिय मन से अपनी पढ़ाई पर ध्यान केन्द्रित कर सकें। दो अभिभावकों ने इस बात की ओर इशारा भी किया कि खेलकूद के कारण बच्चे नियमित रूप से स्कूल जाने के लिए उत्साहित रहते हैं और स्कूल में उन्हें मजा आने लगता है।

स्कूलों में खेलों के लिए प्रावधान – समय और सुविधाएँ

अभिभावकों को आकर्षित करने के लिए ''बच्चे का समग्र विकास'' स्कूलों द्वारा प्रयुक्त आम भाषा का हिस्सा बन गया है। इसी के मद्देनजर, विशेषतौर से निजी स्कूलों में, बढ़िया खेल–सुविधाएँ मुहैया करवाने पर काफी बल दिया जा रहा है। इसमें आवश्यक बुनियादी ढाँचा भी शामिल है और बच्चों के मार्गदर्शन के लिए समुचित मानव–संसाधन भी। परिष्कृत और बेहतर खेल–सुविधाओं वाले स्कूल समाज के विशिष्ट, उच्च–मध्यम वर्ग को

अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। मध्यम वर्ग को अपनी सेवाएँ देने वाले निजी स्कूल ये सुविधाएँ माँग होने पर मुहैया करवाते हैं। अधिकांश निजी स्कूलों में ऐसे क्लबों का प्रावधान रहता है जहाँ बच्चे शुल्क चुकाकर सामान्य गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड में होने वाले खेलकूद के अलावा अपने दूसरे शौक पूरे कर सकते हैं, बशर्ते कि उनके अभिभावक उनका खर्च वहन कर सकते हों। सरकारी स्कूलों के बच्चों को तो केवल गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड पर ही सन्तोष कर लेना पड़ता है, क्योंकि खेलकूद की सामग्री को आम तौर पर उनकी पहुँच से दूर रखा जाता है। केवल 'खेल दिवस' जैसे विशेष अवसरों पर ही उन्हें इस सामग्री का इस्तेमाल करने का मौका मिलता है।

ज्यादातर प्राइवेट स्कूलों के पास विभिन्न खेलों के लिए आवश्यक खेल सामग्री तो होती है लेकिन विशेष किस्म के खेल मैदान कुछ ही स्कूलों में होते हैं। अधिकतर स्कूलों में, जरूरत पड़ने पर ही, केवल आन्तर– और अन्तर–स्कूली प्रतियोगिताओं के दौरान ये सुविधाएँ तैयार की जाती हैं। बच्चों ने बताया कि गेम्स और स्पोर्टस् के दिन वे अपना निजी बैडमिण्टन या टेनिस रैकेट या क्रिकेट बल्ला स्कूल लेकर जाते हैं। हाँ, जो बच्चे अपना खेल सामान अपने साथ स्कूल ले जाना भूल जाते हैं, स्पोर्टस् पीरियड के दौरान वे चीजें उन्हें स्कूल से भी दी जा सकती हैं। अब चूँकि बच्चे अपनी व्यक्तिगत खेल सामग्री स्कूल ले जाते हैं और विशेष किस्म के खेल–मैदान घर या स्कूल में उपलब्ध नहीं होते, ऐसे में खेलने की पसन्दीदा जगह चुनने के सन्दर्भ में मित्र–मण्डली आदि जैसे कारक और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

अधिकांश (9/15) विद्यार्थियों का कहना था कि उन्हें स्कूल की बजाय घर पर खेलना ज्यादा अच्छा लगता है। गिनवाए गए कारण थे उन दोस्तों की उपलब्धता जिनके साथ खेलने में उन्हें आनन्द आता है और खेलने के समय का लचीलापन। एक लड़की ने बताया कि चूँकि उसकी क्लास के साथी दूसरे सेक्शनों में चले गए हैं और उसके स्कूली मित्र उसके साथ खेलने के लिए उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए वह अपने घर पर ही अपने कुछ दोस्तों के साथ खेलना पसन्द करती है। कुछ बच्चों को घर की बजाय स्कूल में खेलने में मजा आता था। दिया गया एक कारण था कि वहाँ उनके दोस्त होते हैं (3/15) जबकि कुछ (3/15) ने स्कूल में बेहतर खेल–सुविधाओं के उपलब्ध होने का कारण बताया।

अधिकांश स्कूलों में नीति और कक्षा के अनुसार प्रति सप्ताह खेल के 2–4 पीरियड का प्रावधान होता है।

इससे बच्चों को यह अप्रत्यक्ष रूप से यह सन्देश मिलता है कि गेम्स और स्पोर्टस् की कोई अहमियत नहीं है। पढ़ाई से तो उनका कोई मुकाबला ही नहीं है।

जैसे–जैसे बच्चे ऊपर की कक्षाओं की ओर बढ़ते जाते हैं, उन्हें आधिकारिक रूप से मिलने वाले गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड कम होते जाते हैं। माध्यमिक स्कूल और बड़ी कक्षाओं में जाते ही, सारा ध्यान प्राइमरी कक्षाओं में खेले जाने वाले 'डॉग एण्ड द बोन' और कोड़ा जमालशाही जैसे खेलों से हटाकर बास्केटबॉल, क्रिकेट और बैडमिण्टन जैसे संगठित खेलों पर दिया जाने लगता है। बच्चों के खेलों में यह परिवर्तन सामाजिक और नैतिक विकास के साथ–साथ उनकी बढ़ती शारीरिक और संज्ञानात्मक क्षमताओं का द्योतक होता है।

उम्र बढ़ने पर, खेल–पीरियडों की संख्या कम होने के साथ–साथ उन्हें मिलने वाले कुल खेल–समय में भी कटौती हो जाती है। कुछ हद तक तो यह पढ़ाई का बोझ बढ़ने के कारण होता है और कुछ हद तक सामाजिक कारकों के चलते बच्चों की रुचि में आए बदलाव की वजह से। स्कूल में स्पोर्टस् पीरियड का उपयोग अक्सर दूसरे विषयों की अतिरिक्त कक्षा के रूप में कर लिया जाता है। अकादमिक वर्ष के अन्तिम सत्र में ऐसा अक्सर होता है। इससे बच्चों को यह अप्रत्यक्ष रूप से यह सन्देश मिलता है कि गेम्स और स्पोर्टस् की कोई अहमियत नहीं है। पढ़ाई से तो उनका कोई मुकाबला ही नहीं है। घर पर भी, माँ–बाप यह सुनिश्चित करते हैं कि उनके बच्चे ट्यूशन इत्यादि में जुट जाएँ। खेलों के लिए उनके पास कोई वक्त बचता ही नहीं है। माँ–बाप का यह रवैया उनके उस विचार के उलट है जो वे स्कूलों में खेलों के महत्व को लेकर व्यक्त करते हैं।

भोजनावकाश में और छुट्टी के दिन लड़के और लड़कियाँ किस प्रकार की भागीदारी करते हैं, इससे समाजीकरण की भूमिका स्पष्ट हो जाती है। छुट्टी के दिन सुबह का समय खेल में बिताने वाले बच्चों में अधिकांश (5/8) लड़के होते हैं। भोजनावकाश के दौरान भी लड़कियों (3/9) के मुकाबले लड़के (6/9) ही खेलने के लिए

वक्त निकालने की अधिक कोशिश करते हुए मिलते हैं। इससे पहले कि बच्चा दुनिया को समझने लगे, आसपास का माहौल वयस्कों की जेण्डर–सम्बन्धी अपेक्षाओं के हिसाब से ढलने लगता है। जेण्डर सम्बन्धी भूमिकाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को घर पर और स्कूल में एक विशेष प्रकार का व्यवहार प्रोत्साहित और हतोत्साहित करके मजबूती दी जाती है। लड़कियों से उम्मीद की जाती है कि वे शान्त रहेंगी और आक्रामक व्यवहार नहीं करेंगी, और इसका प्रभाव इस बात पर पड़ता है कि वे कौन से खेल खेलेंगी, कितना समय खेलेंगी और कब–कब खेलेंगी।

आमतौर पर स्कूलों में जिस प्रकार गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड संचालित किए जाते हैं, उस पर केवल एक सरसरी नजर डालकर भी हम स्कूलों में उपलब्ध खेल सुविधाओं, खेलने के लिए बच्चों को मिलने वाले समय, और खेलों को दिए जा रहे प्रोत्साहन का अन्दाजा लगा सकते हैं।

खेल पीरियड संचालित करने के तरीके

अधिकांश स्कूलों (16/25) में, विद्यार्थियों को छूट दी जाती है कि वे अपनी पसन्द का खेल चुनें और खेलें। इसमें स्पोर्टस् टीचर का कोई हस्तक्षेप नहीं रहता। वे अपने ढंग से, किन्हीं पैमानों को ध्यान में रखकर, खेलने के लिए अपने समूह बनाने को स्वतन्त्र होते हैं। विद्यार्थियों ने बताया कि आमतौर पर वे अपने हमउम्र समलैंगिकों के साथ खेलना पसन्द करते हैं। वहीं कुछ स्कूलों (6/25) में पूरी कक्षा एक साथ अपनी पसन्द का खेल खेलती है। पूरी कक्षा एक समूह में खेलती है और लिंग–आधारित कोई विभाजन नहीं होता। स्पोर्टस् टीचर का कोई हस्तक्षेप नहीं होता, न तो खिलाड़ी के रूप में और न ही सुपरवाइजर की भूमिका में।

बहुत ही कम स्कूलों (3/25) में विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप में, अपने हिसाब से खेलने की आजादी होती है, और कुछ चुनिन्दा विद्यार्थियों को स्पोर्टस् टीचर किसी खेल विशेष में प्रशिक्षित करते हैं। इन तीन स्कूलों में से एक के स्पोर्टस् टीचर ने बताया कि चूँकि उनकी विशेषज्ञता केवल एक ही खेल में है, इसीलिए वे एक 'निर्धारित' संख्या में विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करने की कोशिश करते हैं ताकि स्कूल के लिए उस खेल की एक अच्छी–खासी टीम खड़ी हो सके। प्रशिक्षण देते समय, स्पोर्टस् टीचर अपने विद्यार्थियों पर पैनी नजर रखता है और अपने हर प्रशिक्षु को समुचित निर्देश और सलाह देता है।

ये तरीके किसी एक स्कूल–विशेष में ही प्रयोग नहीं होते। इन तरीकों का होना या न होना तमाम कारकों पर निर्भर करता है। मसलन, स्पोर्टस् पीरियड के दौरान होने वाली गतिविधियों के बारे में स्कूल की नीति, स्पोर्टस् टीचर की उपलब्धता और उसकी प्रवृत्ति तथा स्कूल के कैलेण्डर के हिसाब से उपलब्ध खेल समय। इसलिए सम्भव है कि वही विद्यार्थी/कक्षा, एक ही शैक्षिक वर्ष में अलग–अलग समय पर इन सभी तरीकों से होकर गुजरें।

जब बच्चों को अपने हिसाब से, अपनी पसन्द का खेल अपने हमउम्र साथियों के साथ खेलने की आज़ादी होती है, तब उनके और उनके स्पोर्टस् टीचर के बीच या तो बिल्कुल संवाद नहीं होता या बहुत कम संवाद होता है। गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड को आमतौर पर इसी तरीके से संचालित किया जाता है। ऐसे में अधिकांश विद्यार्थियों को खेल की तकनीकी बारीकियाँ सीखने और अपने स्पोर्टस् शिक्षक के मार्गदर्शन में अपने कौशल और प्रदर्शन सुधारने का मौका नहीं मिलता। यहाँ यह बात ध्यान में रखना जरूरी है कि भारत में अधिकांश विद्यार्थियों के लिए स्कूल ही वह एकमात्र जगह होती है जहाँ उन्हें संगठित खेल गतिविधियों में भाग लेने और उन्हें सीखने का मौका मिलता है।

लीक से हटकर

सभी स्कूल आन्तर–खेल गतिविधियाँ आयोजित करते थे और अन्तर–स्कूल खेल प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेते थे। शिक्षकों और प्राचार्यों ने इस बात पर बल दिया कि उनका स्कूल यह सुनिश्चित करता है कि प्राथमिक कक्षाओं का प्रत्येक विद्यार्थी कम से कम एक खेल में तो भाग ले। अलबत्ता माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में इस तरह के प्रयास नहीं किए जाते। पाया गया कि इच्छुक और चुनिन्दा विद्यार्थियों के लिए खेल प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। विद्यार्थियों ने भी यही कहा कि उन्हें खेल प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेना अच्छा लगता है और वे भाग लेते भी हैं पर आमतौर पर वे शुरुआती दौर में ही बाहर हो जाते हैं। खेल का कौशल और उसकी बारीकियाँ समझने की योग्यता न हो तो ऐसा होना लगभग तय होता है, विशेष तौर से इसलिए कि यह सब हासिल करने के लिए किसी विशेषज्ञ का मार्गदर्शन मिलना आवश्यक होता है।

यह तो स्पष्ट है कि केवल उन कुछेक विद्यार्थियों को ही प्रशिक्षण दिया जाता है जिन्हें स्कूल का प्रतिनिधित्व करने की दृष्टि से उपयोगी और महत्वपूर्ण समझा जाता है।

बच्चों के अनुसार अन्तर–स्कूली खेल टूर्नामेन्ट में भाग लेने के लिए चयन उनके स्पोर्टस् टीचर द्वारा किया जाता है। चयन स्पोर्टस् की कक्षाओं के दौरान और खेल दिवस पर उनके प्रदर्शन के आधार पर होता है। इन शिक्षकों का कहना था कि चूँकि वे ज्यादातर विद्यार्थियों को लगभग पूरे साल खेलते हुए देखते हैं, इसलिए टीम चुनने में उन्हें कोई कठिनाई पेश नहीं आती। विद्यार्थियों में छुपी सम्भावनाओं, योग्यताओं और खेल के प्रति उनके लगाव और भावना को समझ पाने के लिए आवश्यक है कि शिक्षक साल भर अपने विद्यार्थियों के प्रदर्शन पर लगातार नजर रखे और उन द्वारा किए गए प्रदर्शन पर उनसे बातचीत करे। असल में शायद ऐसा होता नहीं है। लगता है कि इसीलिए एक बच्चे की स्वाभाविक, प्राकृतिक क्षमताओं और शारीरिक विशिष्टताओं (जैसे ऊँचे कद का होना) को चयन की प्रक्रिया में अत्यधिक महत्व दे दिया जाता है।

अन्तर–स्कूली टूर्नामैण्ट के लिए चयनित विद्यार्थियों हेतु स्कूल में ही विशेष प्रशिक्षण सत्र आयोजित किए जाते हैं। ये विशेष सत्र या तो स्कूल खुलने के पहले सुबह–सुबह, या कक्षाएँ समाप्त हो जाने के बाद शाम के समय, या फिर शून्य काल में रखे जाते हैं। प्राचार्यों ने बताया कि अन्तर–स्कूली विशेष प्रशिक्षण के लिए विशेषज्ञ–कोच अतिथि–प्रशिक्षक के तौर पर बुलाए जाते हैं ताकि विद्यार्थियों को अपना खेल–स्तर सुधारने में मदद मिले। यह तो स्पष्ट है कि केवल उन कुछेक विद्यार्थियों को ही प्रशिक्षण दिया जाता है जिन्हें स्कूल का प्रतिनिधित्व करने की दृष्टि से उपयोगी और महत्वपूर्ण समझा जाता है।

उपसंहार

स्पष्ट ही है कि विद्यार्थियों के लिए खेल सुविधाओं की उपलब्धता, उनके स्कूल पर निर्भर करती है। और स्कूल का चुनाव माँ–बाप की सामाजिक–आर्थिक हैसियत के हिसाब से होता है। सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से ऊँचे तबकों को अपनी सेवाएँ देने वाले स्कूल खेलों और स्वास्थ्य को लेकर अपनी नीतियों में ज्यादा सचेत और उदार दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में, 'आम जन' को उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है – उनके लिए किसी भी सामाजिक संस्था या एजेंसी की ओर से हस्तक्षेप नहीं किया जाता।

गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड संचालित करने के तरीके और खेलों के लिए विद्यार्थियों के चयन की प्रक्रिया इस सोच के स्वीकार्य की ओर इशारा करते हैं कि खिलाड़ी पैदाइशी होते हैं, बनाए नहीं जाते। नतीजतन, प्रशिक्षण और विकास की भूमिका को दरकिनार कर दिया जाता है। इससे यह समझ में आता है कि हमारे स्कूल बस अन्तर–स्कूली स्तर पर उपलब्धियों तक सीमित संकीर्ण दृष्टिकोण रखते हैं और नतीजतन एक औसत विद्यार्थी की रुचियों और जरूरतों की अनदेखी करते हैं। इन्हीं कारणों से बच्चे और उनके अभिभावक खेलों को कभी एक करियर–विकल्प के रूप में नहीं देखते।

सन्दर्भ :

1. Position Paper: National Focus Group on Health and Physical Education, NCERT
2. Novosti Press Agency. (1973).Sports in Soviet Schools. The Elementary School Journal, Vol. 74, No. 1 (Oct., 1973), pp. 28-33
3. Berk, Laura. (1996). Child Development. Prentice Hall of India
4. Bredemeier, B. J., & Shields, D. L. (1987). Moral growth through physical activity: A structural/developmental approach in Chambers, Sam T. (May, 1991). Factors Affecting Elementary School Students' Participation in Sports. The Elementary School Journal, Vol. 91, No. 5
5. CCE, 2009. CBSE

रेखा बड़सिवाल *एक शिक्षक–प्रशिक्षक हैं। वे दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में प्राइमरी स्कूल टीचर रही हैं और इससे उन्हें स्कूली जीवन को समझने में मदद मिली। वर्तमान में वे दिल्ली विश्वविद्यालय के मिराण्डा हाउस महाविद्यालय में असिस्टेन्ट प्रोफेसर हैं। उनसे ई–मेल पर सम्पर्क कर सकते हैं – rekhabadsiwal@gmail.com*